पुष्प १७५ वां

निश्चय - व्यवहार

समयसार - एक विवेचन

श्री पं. सूरजमल खासगीवाला

भिवंडी (महाराष्ट्र)

: प्रकाशक :

भरत पवैया M.Com., LL.B.

: संयोजक :

तारादेवी पवैया ग्रन्थमाला

44, इब्राहिमपुरा, भोपाल – 462001

अध्यात्म प्रेमी
श्रीमान रिखबचंद नेमिचंद पहाड़िया परिवार
पीसांगन (अजमेर) की ओर से विनम्र भेंट

प्रथम आवृति

महावीर जयंती
वीर संवत् २५३३
३१ मार्च २००७

सादर भेंट

कम्पोजिंग : मल्टीमीडिया 4यू : 2546749, 9303131737

व्यवहार नय की उपयोगिता :

१. जैन दर्शन के विषय में विप्रतिपत्ति (विपरीत निश्चय का नाम) तथा संशय के दूर करने के लिए।

२. वस्तु के स्वरूप के सम्बन्ध में कोई विरुद्ध प्रतिपादन करता हो तो उसको हटाने के लिए।

३. अपने को संशय होवे तो उसका विचार करके निर्णय करने के लिए अथवा विशेष ज्ञान की प्राप्ति अर्थ विचार करने के लिए और

४. गुरू शिष्य को समझने और समझाने की पद्धति के लिए।

उत्तम साधु का लक्षण

शरीर में ममता का अभाव, गुरु में नम्रता, निरंतर शास्त्र का अभ्यास, चारित्र की निर्मलता, मोह की उपशमता, संसार से उदासीनता, अन्तर तथा बहिरंग परिग्रह का त्याग, धर्मज्ञता, और सज्जनता यह उत्तम साधु का लक्षण है और यह लक्षण उनके संसार का विच्छेद करने वाला है ।

संचिता भव वासना

संचिता भव वासना का अंत करना चाहिये ।
अब कषायी भाव को संपूर्ण हरना चाहिये ॥
जानकर सामान्य छह गुण ध्यान अपना कीजिये ।
चार जो कि अभाव है उनको हृदय में लीजिये ॥
शुद्ध षटकारक सदा ही प्राप्त करना चाहिये ।
संग सामग्री यही शिवमार्ग पर लेकर चलो ॥
ज्ञान की ही भावना ले कर्म कालुषता दलो ।
अब हमें सिद्धत्व की ही प्राप्ति करना चाहिये ॥

निश्चय

१. निश्चय नय अर्थात द्रव्यार्थिक नय।

२. निश्चय से तो शुद्धात्मा का ही स्तवन किया जाता है।

३. शुद्ध नय भूतार्थ है क्योंकि वह समता को अपनाकर एकत्व को लाता है। समता को अपनाकर ही सम्यग्दृष्टि देखनेवाला होता है।

४. सातवें गुणस्थान से आगे निश्चय आराधना होती है।

५. निर्विकल्प नय से तो अपने आप में ही आराधक भाव को स्वीकार करने रूप निर्विकल्प समाधि है।

६. निश्चय नय शुद्ध द्रव्य का कथन करने वाला है, वह परम शुद्धात्मा की भावना में लगे हुए पुरुषों के द्वारा अंगीकार करने योग्य है।

७. शुद्ध निश्चय नय शुद्ध द्रव्य का कथन करने वाला है, वह परम शुद्धात्मा की भावना में लगे हुए पुरुषों के द्वारा अंगीकार करने योग्य है।

८. निश्चय नय से आत्मा जिस समय जैसे शुद्ध या अशुद्ध भावों को उपजाता है उस समय उस भाव का कर्ता होता है।

९. शुद्ध निश्चय नय से जीव के रागादि और वर्णादि ऐसे दोनों भाव नहीं है।

१०. जो भाव श्रुतरूप स्वसंवेदन ज्ञान के द्वारा केवल अपनी शुद्ध आत्मा को जानता है वह निश्चय श्रुत केवली होता है। (नियमसार गाथा १६९)

११. जो भूतार्थ निश्चय नय को जानता हुआ तीन काल में होने वाले पर द्रव्य संबंधी मिथ्या विकल्प को नहीं करता है। वह मोह भाव रहित सम्यग्दृष्टि, अन्तरात्मा

व्यवहार

१. व्यवहार नय अर्थात पर्यायार्थिक नय।

२. व्यवहार से पूज्य पुरुषों की देह का स्तवन किया जाता है।

३. व्यवहार नय अभूतार्थ है अर्थात विशेषता को दृष्टि में रखकर विषमता को पैदा करने वाला है।

४. छट्टे गुण स्थान तक व्यवहार आराधना होती है।

५. वचन विकल्पात्मक ही व्यवहार आराधना है।

६. वचनात्मक द्रव्य नमस्कार के द्वारा वंदना करना व्यवहार नय है।

७. जो पुरुष अशुद्ध व नीचे की अवस्था में स्थित है उनके लिये व्यवहार नय ही कार्यकारी है।

८. व्यवहार नय से आत्मा पुद्गल कर्मों का कर्ता होता है।

९. व्यवहार नय से जीव के रागादि और वर्णादि ऐसे दोनों भाव है।

१०. किंतु जो अपनी शुद्ध आत्मा का अनुभव नहीं कर रहा हैं, न उसकी भावना कर रहा है, केवल बर्हिविषयक द्रव्य श्रुत के विषय भूत पदार्थों को जानता है वह व्यवहार श्रुत केवली है।

११. अशुद्ध निश्चय नय से होने वाले जीव के (रागादिरूप) परिणाम को जो करता है वह मोह को लिये हुये अज्ञानी बहिरात्मा होता है।

ज्ञानी होता है। अर्थात भेदाभेद रत्नत्रय की भावना में निरत रहता है।

१२. निश्चय नय (जो तादात्म्य संबंध को ही स्वीकार करता है) से जीव और देह किसी काल में भी एक नहीं है, भिन्न भिन्न है।

१३. देह का स्तवनकरने पर व्यवहार से उनकी आत्मा का स्तवन हो जाता है किंतु निश्चय से नहीं। निश्चय नय में तो जब केवली के ज्ञानादि गुणों का स्तवन करता है, तभी केवली भगवान का स्तवन समझा जाता है।

१४. वर्ण, गंध, रस, स्पर्श और रूप तथा संस्थान और संहनन ये जीव (आत्मा) के स्वभाव नहीं है। राग, द्वेष, मोह, मिथ्यात्वादि प्रत्यय तथा कर्म, नो कर्म ये जीव (आत्मा) के स्वभाव नहीं है। वर्ग,वर्गणा, स्पर्धक, अध्यात्म स्थान, अनुभाग स्थान, ये भी जीव के स्वभाव नहीं है। कोई भी योग स्थान, बंध स्थान, उदयस्थान और मार्गणा स्थान ये सब जीव के स्वभाव नहीं है स्थिति बंध स्थान, संक्लेस स्थान, विशुद्धि स्थान, संयम लब्धिस्थान तथा जीव स्थान और गुण स्थान ये सब जीव के स्वभाव नहीं है, एवं शुद्धानुभूति से भिन्नता रखनेवाले है। ये सब तो निश्चय नय से तो जीव के नहीं हैं।

१५. निश्चय नय तो मूलद्रव्य को लक्ष में लेकर स्वभाव का ही कथन करनेवाला है, इसलिए निश्चय नय की दृष्टि में वर्णादिकभाव जीव के नहीं है क्योंकि सिद्ध अवस्था में ये (वर्ण–गुणस्थान आदि) नहीं होते। यह सब विवक्षा भेद से है, स्याद्वाद में इसका कोई विरोध नहीं

व्यवहार

१२. व्यवहार नय (जो कि संयोग मात्र को लेकर चलता है)क कहता है कि जीव और देह अवश्य एक हैं

१३. जीव से भिन्न इस पुद्गलमय देह का स्तवन करके मुनि व्यवहार से ऐसा मानता है कि मैंने केवली भगवान की स्तुति और वंदना कर ली।

१४. वर्ण, गंध, रस, स्पर्श और रुप तथा संस्थान और संहनन– राग, द्वेष, मोह, मिथ्यात्वादि प्रत्यय तथा कर्म, नो कम – वर्ग, वर्गणा, स्पर्धक, अध्यात्म स्थान, अनुभाग स्थान – योग स्थान, बंध स्थान, उदय स्थान और मार्गणा स्थान, स्थिति बंध स्थान, संवलेश स्थान, विशुद्धि स्थान, संयम लब्धि स्थान, जीव स्थान, गुणस्थान ये सब ही पदगुल द्रव्य के संयोग से होने वाले परिणाम है। किंतु व्यवहार नय से तो ये सब जीव के हैं।

१५. व्यवहार नय पार्यायार्थिक है अत एव जीव के साथ पुदगल का संयोग होने से जीव की औपाधिक अवस्था हो रही है। उसका वर्णन करता है, इसलिए ये वर्णादिक से गुणस्थान पर्यन्त भावों को जीव के कहता है।

है।

१६. शुद्ध निश्चय नय तो शुद्धात्मा के अनुभव स्वरुप है। यहां गुणस्थानादि न झलक कर मात्र ज्ञाता-दृष्टापन ही झलकता है और उसी का अनुमनन-चिंतन होता है किंतु विकल्परुपी व्यवहार संपन्न कर फिर ध्यान स्वरूप निश्चय पर पहुंचता है वहां थक जाने पर फिर व्यवहार में आता हैं। दोनों नय अपने-अपने स्थान पर उपयोगी है। इस प्रकार अभ्यास द्वारा अशुद्धता को दूर कर शुद्धता पर आना, यह प्रत्येक साधक का मुख्य कर्तव्य है।

१७. जीव स्थान और उसके आश्रित वर्णादिक ये सभी निश्चय से जीव के स्वरूप नहीं है। समयसार तो भावनात्मक ग्रंथ है। वैराग्यपूर्ण ज्ञान को ज्ञान कहा गया और उससे बंध का निरोध होता है।

१८. शुद्ध निश्चय नय की अपेक्षा से सब गुणस्थान सदा अचेतन है।

१९. जीव और अजीव जीवाजीवाधिकार रूप रंगभूमि में निश्चय नय से श्रृंगार रहित पात्र के समान पृथक होकर निकल गये।

२०. धर्म में आत्मा निमित्त है।

२१. शुद्ध निश्चय नय की अपेक्षा से कर्ता कर्म भाव रहित जीव और अजीव के हैं।

२२. वीतरागता तो आत्मा का स्वभाव हैं। कर्ता कर्म की प्रवृत्ति का अभाव हो जाने पर निर्विकल्प समाधि होती

१६. किंतु जहां ध्यान स्वरूप-निश्चय नय का अवलम्बन छूटा कि साधक को कर्तव्यशीलता पर आकर मैं कौन हूं और मुझे क्या करना चाहिये ? मैं मुनि हूँ और छट्टे गुणस्थान की अवस्था में हूँ, अतः मुझे स्तवन आदि षट आवश्यक करना चाहिये इत्यादि विकल्पों को अपनाता है। व्यवहार नय से संसारी जीव के साथ वर्णादिक के साथ एक मेकता है।

१७. पर्याप्त, अपर्याप्ति एवं सूक्ष्म और बादर ये सब देह की संज्ञायें हैं। उन्हीं को व्यवहार नय से परमागम में अभेद अपेक्षा से जीव की बताई है। इसमें को दोष नहीं है, इस प्रकार जीवस्थान और उसके आश्रित वर्णादिक ये सभी व्यवहार से जीव के स्वरूप हैं।

१८. यद्यपि अशुद्ध निश्चय नय से गुण स्थान चेतन है (क्योंकि चेतना के विकार है)

१९. जीव और अजीव जीवाजीवाधिकार रूप रंगभूमि में श्रंगार सहित पात्र के समान व्यवहार नय से एकरूपता को प्राप्त हुए, प्रविष्ट हुए।

२०. संसार में कर्म बलवान है।

२१. किंतु व्यवहार नय की अपेक्षा से वही जीव और अजीव कर्ता कर्म के भेष में श्रंगार सहित पात्र के समान प्रवेश करते हैं।

२२. क्रोधादिक भाव आत्मा के कर्म जन्य विकारी भाव है जो कि अनादि से आत्मा में होते आ रहे हैं।

है।

२३. यह जीव शुद्ध निश्चय नय से अपने स्वरूप को नहीं छोड़ता है।

२४. निश्चयरूप से जीव कर्म और नो कर्मों का कर्ता नहीं है ऐसा समझकर जो पुरुष अपने स्वसंवेदन (समाधिरूप) ज्ञान से जो अपने शुद्धात्मा को जानता है वही ज्ञानी होता है। निश्चय से यह जीव पुण्य पापादि परिणामों काकर्ता नहीं है।

२५. निश्चय से इस जीव का कर्ता कर्म भाव और भोक्ता योग्य भाव भी अपने परिणामों के साथ ही है।

२६. आत्मा कर्म और नो कर्म के परिणाम का उत्पादन कर्ता नहीं हैं, इस प्रकार वह निश्चय शुद्ध आत्मा का परम समाधि क द्वारा अनुभव करता हुआ ज्ञानी होता है। निश्चय नय से आत्मा पुण्य पापादि परिणामों का कर्ता नहीं है।

२७. निश्चय से पर द्रव्य की अवस्था रूप न परिणमन करता है, न उसको ग्रहण करता है न उर रूप में उत्पन्न ही होता है। इसलिए ये निश्चय से उसके साथ कर्ता कर्म भाव नहीं है।

२८. जो अज्ञान, अविरति, मिथ्यात्व उपयोगात्मक है वे जीव है।

२९. निश्चय नय अभिन्न-तादात्म्य संबंध या उपादान-उपेय भाव को ही ग्रहण करता है। उसकी दृष्टि संयोग संबंध पर नहीं होती।

३०. आत्मा निश्चय नय से तो अपने भावों का ही कर्ता

व्यवहार

२३. व्यवहार से कर्मों के उदय केवश होकर राग, द्वेषादि औपाधिक विकारी परिणामों का कर्ता है और कर्मऔर नो कर्मों का भी कर्ता है।

२४. जिस प्रकार कलश का उपादान रूप से कर्ता मिट्टी का लोंदा है उसी प्रकार यह जीव व्यवहार से पुण्य पापादि परिणामों का भी कर्ता है।

२५. व्यवहार नय से जीव पुदगल कर्मों का कर्ता और भोक्ता भी हैं।

२६. कर्म और नो कर्म के परिणामों का कर्ता पुदगल द्रव्य है। व्यवहार नय से आत्मा पुण्य पापादि परिणामों का कर्ता है।

२७. अपने परिणामों के निमित्त से उदय में आये हुए पुद्गल कर्म की पर्यायरूप में मिट्टी कलश रूप में परिणमन करती है। मिट्टी और कलश में परस्पर उपादान और उपादेय भाव है।

२८. जो मिथ्यात्व, योग, अविरति और अज्ञान कर्म वर्गणारूप हैं वे तो अजीव है।

२९. व्यवहार नय संयोग संबंध और निमित्त नैमित्तिक भावों को बतलाने वाला हैं।

३०. व्यवहार नय से आत्मा द्रव्य कर्मों का करनेवाला व

भोक्ता है। किंतु समादि दशा में निश्चय नय का अवलम्बन रहता है।

३१. ज्ञानी जीव पर – द्रव्य का कर्ता नहीं है।

३२. निश्चय से सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यग्चारित्रमय अपनी आत्मा को मोक्ष का कारण जान।

३३. निश्चय के बिना तत्त्व (वस्तु) का नाश हो जायेगा।

३४. निश्चय का साधन–स्वाश्रय है।

३५. स्वद्रव्य को श्रद्धान करता हुआ और उस स्वद्रव्य को ही जानता हुवा तथा उस स्वद्रव्य की ही स्वद्रव्य की ही उपेक्षा करता हुआ उत्तम मुनि निश्चय से मोक्ष मार्ग है अर्थात अभेद दृष्टि से वह शुद्धोपयोगी मुनि ही निश्चय मोक्ष मार्ग है।

३६. स्वभाव से शुद्ध नित्य और स्वभाव पर दृष्टि निश्चय है। दोनों को मानकर निश्चय का आदर करना अनेकांत है और उस निश्चय स्वभाव के बल से ही धर्म होता है।

३७. जो दर्शन, ज्ञान और चारित्र में स्थित होकर रहता है वह स्व–समय (मुक्त जीव) है।

३८. शुद्ध निश्चय से जीव को अकर्ता और अभोक्ता तथा क्रोधादि से भिन्न बताया।

३९. अनादि बंधनबद्ध जीव शुद्ध निश्चय नय से शक्तिरूप से अमूर्त है।

४०. शुद्ध निश्चय नय से यह जीव शुद्ध–बुद्ध एक स्वभाव वाला है, इस कारणयह न तो किसी को उपजाता है न करता है, न बांधता है, न परिणमता है और न ग्रहण

व्यवहार

भोगनेवाला भी है। यह व्यवहार नय समाधि–अवस्था से च्युत अज्ञान दशा में स्वीकार किया जाता है।

३१. अज्ञानी जीव पर द्रव्य का कर्ता है।

३२. व्यवहार से सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक् चारित्र को मोक्ष का कारण जान।

३३. व्यवहार नय के बिना तो तीर्थ व्यवहार मार्ग का नाश हो जायेगा।

३४. व्यवहार का साधन – परलक्ष है।

३५. पर–द्रव्य को श्रद्धान करता हुआ और उर पर द्रव्य को ही जानता हुआ और उस पर द्रव्य की ही अपेक्षा करता हुआ मुनि व्यवहारी मुनि माना गया है। अर्थात अभेद दृष्टि से वह शुभपयोगी मुनि ही व्यवहार मोक्ष मार्ग है।

३६. पर्याय से अशुद्ध, अनित्य और पर्याय पर दृष्टि व्यवहार है।

३७. जो पौद्गलिक कर्मोपदेशों में स्थित होकर रहता हैं वह समय (संसारी जीव) है।

३८. व्यवहार नय से जीव का कर्तापन, भोक्तापन और क्रोधादि से अभिन्नपना भी अपने आप आ जाता है।

३९. अनादि बंधन बद्ध जीव व्यक्तिरूप से व्यवहार नय से मूर्त है।

४०. व्यवहार नय का यह कहना है कि आत्मा पुद्गल द्रव्य कर्म को उपजाता है, करता है, बांधता है, परिणमता है और ग्रहण भी करता है।

ही करता है।

४१. जैन मत में शुद्ध उपादान करने वाले शुद्ध निश्चय नय से जीव कर्मों का कर्ता नहीं है।

४२. ज़ीवों का अज्ञान भाव मुख्य (निश्चय) कथन जानने से दूर होता है।

४३. जो अपने ही आश्रय से हो उसे निश्चय कहते हैं।

४४. निश्चय को भूतार्थ अर्थात भूतार्थ नाम सत्यार्थ का है भूत अर्थात जो पदार्थ में पाया जावे और अर्थ अर्थात भाव उनको जो प्रकाशित करे तथा अन्य किसी प्रकार की कल्पना न करे उसे भूतार्थ कहते हैं। निश्चय नय आत्म द्रव्य को शरीरादि पर द्रव्यों से भिन्न ही प्रकाशित करता है।

४५. निश्चय नय में पदार्थ एक रूप है अर्थात चैतन्य रस सम्पन्न, अभेद, नित्य और निर्विकार है।

४६. जीव को देह से भिन्न शुद्ध-बुद्ध जानने वाला निश्चय नय है।

४७. शुद्ध पक्ष का उपदेश ही विरल है और उसका पक्ष कभी नहीं आया। कवचित् कवचित् इसलिए उपकारी है। श्री अमृतचंद्र आचार्य ने शुद्ध नय के ग्रहण का फल मोक्ष जानकर उसका उपदेश प्रधानता से दिया है कि शुद्ध नय भूतार्थ है, सत्यार्थ है इसका आश्रय लेने से सम्यग्दृष्टि हुआ जा सकता है।

४८. जो आत्मा इन तीनों - दर्शन, ज्ञान और चारित्र से एकाग्र परिणत होता हुआ अन्य कुछ भी न करता है

व्यवहार

४१. किंतु जैन मत में व्यवहार से जीव मिथ्यात्वादि चार प्रत्यय ही कर्म के कर्ता है।

४२. जीवों का अज्ञान भाव उपचार (व्यवहार) कथन जानने से दूर होता है।

४३. जो पर द्रव्य के आश्रित हो उसे व्यवहार कहते हैं।

४४. अभूतार्थ नाम असत्यार्थ का है। अभूत अर्थात जो पदार्थ में न पाया जावे और अर्थ अीत ''भाव'' उनको जो अनेक प्रकार की कल्पना प्रकाशित करे उसे अभूतार्थ कहते हैं। जीव और पुद्गल की सत्ता भिन्न है, स्वभाव भिन्न हैं, प्रदेश भिन्न हैं तथापि एक क्षेत्रावगाह संबंध का छल पाकर आत्म-द्रव्य से एकत्व रूप कहता है।

४५. व्यवहार नय में पदार्थ अनेक रूप है व्यवहार से आत्मा दर्शन, ज्ञान और चारित्र तीन भेद रूप (गुणरूप) है, वह अभूतार्थ है।

४६. शरीर से तन्मय, राग, द्वेष मोह से मलिन कर्म-कर्म के आधीन करनेवाला व्यवहार नय है।

४७. पं. जयचन्द्रजी श्री समयसार प्राभृत में कहते है कि प्राणियों को भेदरूप व्यवहार का पक्ष तो अनादिकाल से ही विद्यमान है और इसका उपदेश भी बहुधा सभी प्राणि परस्पर करते हैं तथा जिनवाणी में शुद्ध नय का हस्तावलंबन समझकर व्यवहार का उपदेश बहुत किया है किंतु इसका फल संसार ही है।

४८. धर्म, अर्धम आदि का श्रद्धान करना सम्यकत्व है, अंगपूर्व का ज्ञान होना ज्ञान है और तप में प्रवृत्ति करना

और न छोड़ता ही है, वह निश्चय से मोक्ष मार्ग है।

४९. निश्चय नय से तो उसकेन ज्ञान है, न दर्शन है और न चारित्र है वह तो ज्ञायक शुद्ध ही है सिर्फ।

५०. निश्चय नय से तत्त्व को समझा जाता है।

५१. किंतु निश्चय नय कहता है कि ये जीव और शरीर किसी काल में भी एक नहीं हो सकते हैं। निश्चय नय से तो आत्मा स्वयं सिद्ध है, शुद्ध है अतः स्तुति आदि की आवश्यकता ही नहीं है।

५२. जीव में कर्म न बंधे है और न स्पर्शित है ऐसा शुद्ध नय का वचन है।

५३. निश्चय नय से पुद्गल कर्म एक रूप है अर्थात इनमें भेद नहीं है।

५४. आध्यात्म भाषा में निश्चय को शुद्धात्म भावना कहते हैं।

५५. निश्चय से आत्मा अपने आपको देखता है, जानता है।

५६. जो कि निश्चय रूप दूसरे पक्ष द्वारा निषेध किया जाता है। निश्चयवादी बोलता है कि जो जीव को संसार में ही बनाये रखता है वह पुण्य कर्म सुहावना है इसलिए ये सुख देनेवाला कैसे हो सकता है?

५७. जीवादि नव पदार्थों को भूतार्थ नय के द्वारा जानकर अपनी शुद्धात्मा से पृथक रूप से ठीक ठीक अवलोकन करना, निश्चय सम्यग्दर्शन कहलाता है और उन्हीं जीवादि पदार्थों को अपनी शुद्धात्मा से पृथक रूप में जानना सो निश्चय समयग्ज्ञान है और उनको शुद्धात्मा से भिन्न जानकर रागादिरूप विकल्प से रहित होते हुए अपनी शुद्धता मे अवस्थित होकर रहना निश्चय सम्यक चारित्र है। इस प्रकार यह

चारित्र है। यह व्यवहार मोक्ष मार्ग है।

४९. ज्ञानी जीव के दर्शन, ज्ञान और चारित्रये तीन भव व्यवहार नय से कहे जाते है।

५०. व्यवहार नय से तीर्थ चलता है।

५१. व्यवहार नय कहता है कि जीव और शीरर एक ही है। जो स्तुति, वंदना, भक्ति आदि क्रियायें है ये सब व्यवहार नय की अपेक्षा से ही होती है।

५२. जीव में कर्म बंधे है और स्पर्शित है ऐसा व्यवहार नय कहलाता है।

५३. व्यवहार नय द्वारा पुण्य और पाप के भेद से दो रूप होकर इस रंगभूमि में प्रवेश करता है।

५४. आगम भाषा में व्यवहार को वीतराग सम्कत्त्व कहते हैं।

५५. पर द्रव्य को आत्मा व्यवहार से जानता है, देखता है।

५६. जो अशुभ कर्म है वह तो निंदनीय है, बुरा है अतः छोड़ने योग्य है, किंतु शुभ कर्म सुहावना है, सुखदायक है इसलिए उपादेय है, ग्रहण करने योग्य है। ऐसा कुछ व्यवहारवादी लोगों का कहना है।

५७. जीवादि नव पदार्थों का विपरीत अभिप्राय से रहित सो सही श्रद्धान है वही सम्यग्दर्शन है। उन्हीं जीवादि पदार्थों का संशय- उभय कोटि ज्ञान, विमोह - विपरीत एक कोटि ज्ञज्ञन, विभ्रम अनिश्चित ज्ञान, इन तीनों से रहित जो यथार्थ अधिगम होता है, निर्णय कर लिया आता है, जान लिया जाता है वह सम्यग्ज्ञान कहलाता है और उन्हीं के संबंध में होने वाले जो रागादिक विभाव होते है उनको दूर हटा देना सो

निश्चय मोक्ष मार्ग हुवा। निश्चय रत्नत्रय का कारश्ण व्यवहार रत्नत्रय से है।

५८. निश्चय को छोड़कर बुद्धिमान लोग व्यवहार में प्रवर्तन नहीं करते अपितु अपनी आत्मा में रमण करते रहते हैं क्योंकि कर्मों का क्षय इसी से होता है। यह अध्यात्मिक शैली का कथन है।

५९. निश्चय नय की अपेक्षा से तो पुदगल रूपी कर्म श्रंगार रहित पात्र के समान एकरूप होकर रंगभूमि से निकल जाते हैं।

६०. निश्चय नय से वीतराग रूप स्वसंवेदनात्मक ज्ञान का हो जाना सो द्वादशांगावगम कहलाता है।

६१. भक्ति का नाम तो सम्यक्त्व है किंतु निश्चय से तो वह भक्ति वीतराग सम्यग्दृष्टि जीवों के शुद्धात्मतत्त्व की भावना के रूप में हुआ करती है।

६२. निश्चय नय स्वावलम्बी है, स्वयं आत्म निर्भर करता है। निश्चय नय मुख्यतया ऋषियों के द्वारा ग्राह्य है।

६३. निर्विकल्परूप निश्चय नय है।

६४. मेरी आत्मा ही ज्ञान है, आत्मा ही दर्शन है, आत्मा ही चारित्र है, आत्मा ही प्रत्याख्यान है, आत्मा ही संवर है और आत्मा ही योग है ऐसा निश्चय नय कहता है। इस प्रकार स्वशुद्धात्मा के ही आश्रय होने से यह निश्चय मोक्ष मार्ग है। निश्चय मोक्ष मार्ग तो प्रतिषेधक है।

६५. मोक्ष का मार्ग अर्थात त्याग करने का उपाय-बाह्य सर्व

सम्यक चारित्र कहलाता है। यह व्यवहार मोक्षमार्ग है। व्यवहार रत्नत्रय कारण रूप होता है।

५८. आगम शैली कहती है कि व्यवहार में प्रवृत्ति किये बिना निश्चय को प्राप्त नहीं किया जा सकता अतः विद्वान लोग व्यवहार मोक्ष मार्ग को– त्याग भाव को स्वीकार करके उससे निश्चय मोक्ष मार्ग परम समाधि को प्राप्त कर लेते हैं।

५९. व्यवहार नय से कर्म पुण्य और पाप रूप दो प्रकार का है।

६०. द्वादशांग के विषय में जो ज्ञान है वह व्यवहार नय से इतर जीवादि बाह्य समस्त पदार्थों का श्रुत के द्वारा ज्ञान हो जाना है।

६१. भक्ति नाम सम्यकत्त्व का है जो व्यवहार से तो पंच परमेष्ठी की समाराधना रूप होती है वह सराग सम्यग्दृष्टि जीवों के हुआ करती है।

६२. व्यवहार नय परावलम्बी है, बाह्य अन्य पदार्थों के आश्रय पर टिकता है, व्यवहार नय जो कि मुख्यतया गृहस्थों के द्वारा अपनाने योग्य है।

६३. सविकल्प रूप व्यवहार नय है।

६४. आचारांग आदि शास्त्र का पढ़ना ज्ञान है, जीवादि ९ तत्त्वों का मानना दर्शन है और छह काय के जीवों की रक्षा करना सो चरित्र है ऐसा व्यवहार नय कहता है। इस प्रकार यह मोक्ष मार्ग का स्वरूप हुआ और व्यवहार मोक्षमार्ग (निश्चय मोक्ष मार्ग से) प्रतिषेध्य है।

६५. मोक्ष का मार्ग अर्थात त्याग करने का उपाय–जीवादि

वस्तुओं का त्याग कर आत्मा को ही मानना, उसे ही जानना और उसी में ही तल्लीन होना यह तो निश्चय मोक्ष मार्ग है जो कि एक ही प्रकार है उसमें भद नहीं है।

६६. अध्यात्म भाषा में वही सुद्धता के अभिमुख परिणाम स्वरूप शुद्धपयोग नाम पाता है। पंचम गुणस्थान से उपर वाले को ही सम्यग्दृष्टि को ही यहाँ पर सम्यग्दृष्टि माना गया है।

६७. निश्चय नय के द्वारा वे लोग यह जानते है कि इन बाह्य वस्तुओं में परमाणु मात्र भी कुछ मेरा नहीं है (बाह्य वस्तुओं –पर द्रव्य)

६८. निश्चय से तो जो कर्ता है सो ही कर्म है। जीव अपने परिणाम स्वरूप कर्म को करता है तो उस चेष्टा रूप कर्म से वह पृथक नहीं रहता, किंतु तन्मय रहता है।

६९. दीपक अपने आपको प्रकाशित करता है यह अभिन्न कर्ता–कर्म का उदाहरण है जो निश्चय से कथन है।

७०. सर्वज्ञ का ज्ञान स्वकीय सुख संवेदन की अपेक्षा तो निश्चय रूप है। किंतु छद्मस्थ की अपेक्षा तो दूसरों के सुख को जाननेवाला सर्वज्ञ का ज्ञान भी वास्तविक है–निश्चय है।

७१. आत्मा का निश्चय नय से एक चेतना भाव स्वभाव है, उसी को देखना, जानना, श्रद्धान करना एवं पर द्रव्य से निवृत्त होना यह उसी के रूपान्तर है।

७२. निश्चय नय से आत्मा (द्रव्य) एक रूप है अर्थात चैतन्य रस सम्पन्न, अभेद, नित्य और निर्विकार है।

७३. जीव को देह से भिन्न, शुद्ध बुद्ध जानने वाला निश्चय नय है। निश्चय नय में पदार्थ एक रूप है।

नव पदार्थों के स्वरूप को भिन्न-भिन्न रूप से अच्छी प्रकार समझकर उस पर विश्वास लाना और हिंसादि पांच पापों का त्याग करना व्यवहार मोक्ष मार्ग होता है।

६६. जीव अपने परमात्म द्रव्य का समीचीन श्रद्धान, ज्ञान, अनुष्ठान करने रूप में परिणमन करता है । उस परिमणन को ही आगम भाषा में औपशमिक, क्षायिक व क्षायोपशमिक भाव नाम से कहा जाता है।

६७. जिन्होने पदार्थ का स्वरूप जान लिया है ऐसे लोग भी व्यवहार की भाषा द्वारा यह (पिच्छी, कमंडल आदि) पर द्रव्य मेरा है ऐसा कहते हैं।

६८. व्यवहार से कर्ता और कर्म का भेद है । जीव पौदगलिक कर्म को करता है फिर भी उससे तन्मय नहीं होता है।

६९. बढ़ई वसुले आदि से रथ बनाता है यह तो भिन्न कर्ता कर्म का उदाहरण है जो व्यवहार से कथन है।

७०. परकीय सुख के संवेदन की अपेक्षा से वही सर्वज्ञ का ज्ञान व्यवहार रूप है, अर्थात परकीय सुख को जानता है फिर भी उससे भिन्न है इसलिए उसे व्यवहार रूप कहा गया है।

७१. पर द्रव्य का ज्ञाता, दृष्टा, श्रद्धाता एवं त्याग करने वाला तो यह आत्मा व्यवहार से ही कहा जाता है।

७२. व्यवहार से आत्मा दर्शन, ज्ञान, चारित्र, तीन भेद रूप (गुण रूप) है वह अभूतार्थ है।

७३. शरीर से तन्मय, राग, द्वेष, मोह से मलिन कर्म के अधीन करने वाला व्यवहार नय है, वह अनेक रूप है।

निश्चय

७४. निश्चय से सब पदार्थ स्वाधीन है कोई किसी से नहीं मिलते हैं।

७५. निश्चय मोक्ष मार्ग उस व्यवहार मोक्ष मार्ग के द्वारा साध्य होता है, प्राप्त करने योग्य होता है। इस आत्मा का संसार की इन बाह्य बातों से वास्तविक सम्बन्ध न होने के कारण आत्म तल्लीन हो जाता है यह अभिन्न रत्नत्रयात्मक निश्चय मोक्ष मार्ग है।

७६. निश्चय नय से देखा जाय तो आत्मा के साथ शरीर का कोई सम्बन्ध नहीं है। आत्मा निश्चय नय की दृष्टि से तो सदा शरीर रहित है तो फिर किसी प्रकार के आहार ग्रहण की आवश्यकता ही क्या है ?

७७. निश्चय नय सब ही मिथ्यात्वदृष्टि द्रव्य लिंगो (बाह्य लिंगो) में किसी को भी मोक्ष मार्ग नहीं मानता।

७८. निश्चय नय से चेतना प्राण है।

७९. शुद्ध नय से शुद्ध ज्ञान, दर्शन ही जीव का लक्षण है।

८०. पांच वर्ण, पांच रस, दो गंध और आठ स्पर्श निश्चय नय से ये जीव में नहीं है, अतः यह अमूर्तिक है।

८१. यह आत्मा निश्चय नय से आत्मा के चेतन भाव-शुद्ध ज्ञान दर्शन को भोगता है - अनुभव करता है।

८२. यह चेतन जीव निश्चय से असंख्यात प्रदेश वाला है।

८३. निश्चय नय तो शुद्ध आनन्दमय आत्मा की परिणति को कहते हैं। जो मोह के निमित्त उत्पन्न होने वाले

व्यवहार

७४. व्यवहार से जगत के द्रव्य एक दूसरे से मिलते हैं, एक दूसरे में प्रवेश करते हैं।

७५. व्यवहार मोक्ष मार्ग निश्चय मोक्ष मार्ग का साधन है जो पूर्व में होता है, कारण समयसार ही मोक्ष मार्ग है जो कि सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक् चारित्र स्वरूप है। शरीर और आत्मा भिन्न भिन्न है, यह भिन्न रत्नत्रयात्मक व्यवहार मोक्ष मार्ग हुआ।

७६. संसारी आत्मा के साथ तो शरीर का संयोग सम्बन्ध है जो कि व्यवहार नय का विषय है। जब वो व्यवहारदृष्टि में आते हैं तब उन्हें शरीर के संयोग को लक्ष में लेकर आहार ग्रहण करने की आवश्यकता होती है।

७७. व्यवहार नय तो मुनि और श्रावक के भेद से दोनों प्रकार के ही लिंगो को मोक्ष मार्ग मानता है।

७८. व्यवहार नय से तीनों कालों में इन्द्रिय, बल, आयु और श्वासोच्छवास ये ४ प्राण है।

७९. आठ प्रकार का ज्ञान और चार प्रकार का दर्शन व्यवहार नय से यह सामान्य जीव का लक्षण है।

८०. कर्म बंध के होने से यह जीव व्यवहारनय से मूर्तिक है।

८१. यह आत्मा व्यवहार नय से पुद्गलमय कर्मों के फल रूप सुख और दुःख को भोगता है।

८२. यह चेतन जीव समुद्र घात अवस्था के सिवाय हमेशा व्यवहार नय की अपेक्षा संकोच और विस्तार के कारण छोटे या बड़े अपने शरीर प्रमाण रहता है।

८३. प्राणियों पर दया भाव रखना, रत्नत्रय धारण करना और उत्तम क्षमादि दश धर्मों का परिपालन करना ये सब

निश्चय

मानसिक विकल्पों से तथा वचन और शरीर के संसर्ग से भी रहित वह निश्चय धर्म है।

८४. धर्म में आत्मा निमित्त है। धर्म में आत्मा महान है।

८५. द्रव्यार्थिक नय की विवक्षा से नित्य है।

८६. निज शुद्धात्मा का श्रद्धान, ज्ञान और उसमें ही रमण रूप चारित्र की एकता को निश्चय मोक्षमार्ग कहते हैं।

८७. इसमें दर्शन, ज्ञान और चारित्र तीनों आत्माश्रित होते हैं इसीलिए यह अभेद रत्नत्रय भी कहलाता है।

८८. निश्चय निर्वत्ति परक है। निश्चय वीतराग दशा है। निश्चय स्वाश्रित है। निश्चय साध्य है। निश्चय परम अवस्था है।

८९. निश्चय नय की दृष्टि से सब संसारी जीव शुद्ध है इसमें कोई भेद नहीं है

卐

स्वभाव परिणति

स्वभाव परिणति ने तो जादू कर दिया।
पर परिणति का विनाश कर दिया ॥
पर परिणति का कुचक्र मिट गया।
मोह मिथ्यात्व पूरा पूरा मिट गया ॥
राग द्वेष भाव को दबोच धर दिया ॥ स्वभाव.
मुझे सम्यक्त्व की बहार मिल गई।
निज भाव से ही ज्ञान कली खिल गई ॥
मानो मैंने सिद्ध पद आज ले लिया ॥ स्वभाव.

व्यवहार

व्यवहार धर्म है।

८४. संसार मे कर्म निमित्त है। संसार मे कर्म बलवान है।

८५. पर्यायार्थिक नय की अपेक्षा से अनित्य है।

८६. जीवादि सात तत्त्वों का श्रद्धान और ज्ञानपूर्वक रागादिक पर भावों के परिहार रूप चारित्र की एकता को व्यवहार मोक्ष मार्ग कहते हैं।

८७. इसमें दर्शन, ज्ञान और चारित्र तीनों ही आत्मा से पृथक पर द्रव्यों के आश्रित है इसीलिए इसे भेद रत्नत्रय भी कहते हैं।

८८. व्यवहार प्रवृत्तिपरक है । व्यवहार मोक्ष मार्ग सराग अवस्था में होता है । व्यवहार पराश्रित है । व्यवहार साधन है। व्यवहार मोक्ष मार्ग प्राथमिक अवस्था है।

८९. व्यवहार नय से संसारी जीव १४ मर्गणा और १४ गुण स्थानों की अपेक्ष १४-१४ प्रकार के होते है।

卐

जब चेतन हिलोरें ले

जब चेतन हिलोरें ले चेतन मन जागे ।
मोह धूजत है विनशत मिथ्या भ्रम भागे ॥
उर तत्व ज्ञान की ज्योति निर्मल प्रगट हुई।
विपरीत मान्यता पूर्ण अब तो विघट हुई ॥
चेतन कैसे भाव निज हित में लागे ।
निज अनुभव रस के गीत सुन सुन हर्षाए ॥
उर साम्य भाव की प्रीत ये प्रति पल पाए।
शिवपथ की लगी होड़ ये सबसे आगे ॥

णमो अरिहंताणं, णमो सिद्धाणं, णमो आयरियाणं,

णमो उवझायाणं, णमो लोए, सव्व साहूणं।

मोक्ष के नव मूल

त्रैकाल्यं, द्रव्य - षटकं नव पद सहितं, जीव षटकाय लेश्याः।
पंञ्चान्ये चास्तिकाया, व्रत-समिति-गति-ज्ञान-चारित्र भेदाः॥
इत्येतन्मोक्ष मूलं त्रिभुवन महितै : प्रोक्त मर्हद भिरीशे :।
प्रत्येति श्रद्धधाति स्पृशति च मति मान यः सवै शुद्ध दृष्टि :॥

- तत्त्वार्थ सूत्र

(आचार्य उमास्वामी/गृद्ध पिच्छ)

अर्थः- तीन लोक के ज्ञाता भगवान ऐसे कहते हैं कि जो इनको जानता है, श्रद्धा करता है और आचरण करता है वह बुद्धिमान शुद्ध दृष्टि है। इस एक श्लोक में इतना दम है कि जीव को इसका भाव भाषण होने पर केवल ज्ञान हो सकता है जो मोक्ष के इन तत्त्वों का ज्ञान करता है, श्रद्धा करता है, आचरण करता है वह शुद्ध दृष्टि है, मोक्ष मार्गी है, मात्र बातें करनेवाला नहीं, भाव भाषण की कीमत है और भाव भाषण बिना आचरण के तीन काल में भी नहीं हो सकता।

भावार्थ :

१. तीन काल :- १. भूतकाल २. वर्तमान काल ३. भविष्य काल

२. छह द्रव्य :- १. जीव २. पुद्गल ३. धर्म ४. अधर्म ५. आकाश ६. काल

३. नव पदार्थ :- १. जीव २. अजीव ३. आश्रव ४. बंध ५. संवर ६. निर्जरा ७. मोक्ष ८. पुण्य ९. पाप

४. षटकाय जीव :- १. पृथ्वीकाय २. जलकाय ३.

अग्निकाय ४.वायुकाय ५. वनस्पति काय ६. त्रसकाय

५. षट लेश्या :- १. कृषण २. नील ३. कापोत (ये तीनों अशुभ लेश्या) ४. पीत ५. पद्म ६. शुक्ल (ये तीनों शुभ लेश्या)

६. बारह प्रकार के व्रत :- १. अहिंसाणुव्रत २. सत्याणुव्रत ३. अचौर्याणुव्रत ४. परिग्रह परमाणुव्रत ५. दिग्व्रत ६. देशव्रत ७. अनर्थ दण्डव्रत ९. सामायिक १०. भोगोपभोग परिमाणव्रत ११. प्रोषधोपवास १२. अतिथि संविभाग व्रत

७. पांच समिति :- १. ईर्या समिति २. भाषा समिति ३. एषणा समिति ४. आदान निक्षेपण समिति ५. प्रतिष्ठापना समिति

८. गतिज्ञान चार :- १.मनुष्य २. तिर्यंच ३. देव ४. नरक

९. चारित्र के ५ भेद :- (संवर तत्त्व के वर्णन में) १. सामायिक २. छेदोपस्थापना ३. परिहार विशुद्धि ४. सूक्ष्म साम्परायिक ५. यथाख्यात

जैन न्याय शास्त्र

न्याय शब्द का अर्थ - उचित निर्णय, तर्क युक्त कथन, युक्ति शास्त्र, आत्मानुभूति, सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक् चारित्र, इमानदारी, सत्य पर आधारित आत्मा को वास्तव में जानना (अनुभव करना) होता है।

अंग प्रविष्ट भाषा (निश्चय) से ''ऊँ'' शुद्धात्मा का वाचक है।

अंग बाह्य भाषा (व्यवहार) से ''ऊँ'' पंच परमेष्ठी का वाचक है।

न्याय ग्रंथ :- में पर मत का खण्डन और स्वमत का मण्डन है।

न्याय :- निश्चय नय से आत्म वैभव को जानना ''न्याय'' है। एक युग से इसको अकलंक न्याय कहा जाने लगा।

न्याय ग्रंथ/सिद्धांत शास्त्रों का महल, जिस पर आधारित हे वह है आचार्य कुन्दकुन्द के पट शिष्य आचार्य उमास्वामी रचित तत्त्वार्थ सूत्र के प्रथम अध्याय का ६ वां सूत्र ''प्रमाण नयैरधिगम'' । इसका अर्थ-पदार्थों का ज्ञान-प्रमाण और नयों से होता है । जैन न्याय ग्रंथों को उत्तमोत्तम दिगम्बर आचार्यों ने पल्लवित किया है।

इन्हीं न्याय ग्रंथों की छटा हमें आचार्यवर श्री कुन्दकुन्द के परमागमों की टीका करने वाले आचार्य श्री अमृतचन्द्र एवं श्री जयसेनाचार्य की ''आत्मख्याति'', ''तत्त्वप्रदीपिका'' और ''तात्पर्यवृत्ति'' आदि टीकाओं में स्थान पर परीलक्षित होती है। इस प्रकार ''न्याय'' के आधार से समस्त कथनों की सिद्धि पग पग पर दिखाई देती है।

समयसार - एक विवेचन

समय पाहुड़ अर्थात समय प्राभृत ग्रंथ जो सम्यक् - समीचीन अय बोध ज्ञान है, जिसके वह समय अर्थात आत्मा। समयसार नाम तो परमात्मा का है।

समय अर्थात आत्मा, प्राभृत (सार) अर्थात शुद्धावस्था। इस ग्रंथ मे आचार्य श्री ने तीन बातें बताई हैं :-

१. आराध्य - आराधक भाव की उपयोगिता २. वाणी की प्रमाणिकता ३. अपने आपका ग्रंथ कर्तव्य।

आराधक हो हम लोग छद्मस्थ कहते हैं। आराध्य तो श्री सिद्ध भगवान है, उनकी आराधना करके हम लोग अपने कर्मों को नष्ट कर सकते हैं।

आराधना दो प्रकार की है १. निश्चय आराधना २. व्यवहार आराधना।

समय शब्द का अर्थ जीव बताया गया है। वह मूल में दो प्रकार का है - १. स्व समय २. पर समय।

स्वसमय अर्थात मुक्त जीव और पर समय अर्थात संसारी जीव।

जो दर्शन ज्ञान और चारित्र में स्थित होकर रहता है वह स्व समय (मुक्त जीव) है। जो पौदगलिक कर्म प्रदेशों में स्थित होकर रहता है वह परसमय (संसारी जीव) है।

काम, बन्ध और भोग की कथा तो सभी जीवों के सुनने में आई हैं लेकिन एकाकी अर्थात एकत्व-विभक्त अर्थात सम्यग्दर्शन, ज्ञान और चारित्र के साथ एकता को लिये हुए अपने आपके अनुभव में आने योग्य शुद्धात्मा का स्वरूप है जो रागादि से रहित एकत्व का जो न तो कभी सुना गया और न अनुभव में ही आया।

जो प्रमत्त और अप्रमत्त इन दोनों अवस्थाओं से ऊपर उठकर केवल ज्ञायक स्वभाव को ग्रहण किये हुए है वह शुद्धात्मा है।

आत्मा का स्वरूप : ज्ञान में, दर्शन में और चारित्र में दृढ़ता से भावना करना । जब तक इस आत्मा के ज्ञज्ञनावारणादि द्रव्य कर्म और रागद्वेषादि भाव कर्म और शरीरादि नो कर्म में – मैं कर्म, नो कर्म में हूं और कर्म–नोकर्म मेरे है, ऐसी प्रतीति होती रहती है तब तक यह आत्मा अप्रतिबुद्ध अर्थात अज्ञानी है।

अजीव रूप देहादिक में परिणत होने पर बंध और

शुद्ध जीव में परिणत होने पर मोक्ष होता है।

निश्चय नय और व्यवहार नय इन दोनों में सापेक्षपना है।

व्यवहार निश्चय का सहचर है।

जो समयसार है वह तो सभी प्रकार केनयों के पक्षपात से रहित होता है, उस समयसार को यदि किसी दूसरे शब्द से कहा जा सकता है तो वास्तव में सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान शब्द द्वारा कहा जा सकता है।

अशुभ कर्म तो पाप रूप है, बुरा है और शुभकर्म पुण्य रूप है अच्छा है। ऐसा सर्व साधारण कहते हैं परन्तु परमार्थ दृष्टि से देखे तो जो कर्म इस जीव को कारागारात्मक शरीर रूप संसार में ही बनायें रखता है वह कर्म अच्छा कैसे हो सकता है ? अर्थात कभी नहीं हो सकता है।

जो भले प्रकार से अपने गुण और पर्यायों में रहता है वह समय कहलाता है अथवा संशयदि रहित ज्ञान जिसको होता है वह समय है।

जो कोई ज्ञान स्वरूप आत्मा में स्थित नहीं हो रहा है और तप करता है तथा व्रतों को धारण करता है तो उसके व्रत और तप को सर्वज्ञ देव अज्ञान तप और अज्ञान व्रत कहते है।

जीवादि (९ पदार्थों) का संशय – उभय कोटि ज्ञान, विमोह विपरीत, एक कोटिज्ञान, विभ्रम अनिश्चित ज्ञान, इन तीनों से रहित जो यथार्थ अधिगम होता है, निर्णय कर लिया जाता है, जान लिया जाता है वह सम्यग्ज्ञान कहलाता है।

आत्मा के सम्यक्त्व गुण को रोकने वाला मिथ्यात्व कर्म है

जिसके उदय से यह जीव मिथ्यादृष्टि हो रहा है। आत्मा के ज्ञान गुण का प्रतिबंधक अज्ञान है। जिसके उदय से यह जीव अज्ञानी हो रहा है तथा चारित्र गुण को रोकनेवाला कषाय भाव है जिसके उदय से यह जीव चारित्र रहित अर्थात अचारित्री हो रहा है ऐसा जिनेन्द्र भगवान ने बताया है।

सम्यग्दृष्टि जीव के अनन्तानुबंधी क्रोध, मान, माया, लोभ और मिथ्यात्व के उदय से होने वाले राग, द्वेष और मोहभाव नहीं होते।

आत्मा से अतिरिक्त किसी भी पर पदार्थ में ''यह अच्छा है'' इस प्रकार का विचार राग भाव है और यह द्वेष भाव है और इस प्रकार की उलझन में अपने आपको अटकाये रखना यह मोह भाव है एवं यह राग-द्वेष और मोह भाव जहाँ पर सर्वथा नहीं है उसी जीव को यहाँ इस अध्यात्म शास्त्र में सम्यग्दृष्टि माना है।

जहाँ पर सब पदार्थों को स्मरण में न लाकर केवल अपनी शुद्धात्मा का ही ध्यान किया जाता है उस परम समाधि अवस्था का नाम ही शुद्ध नय है।

ज्ञान और दर्शन रूप उपयोग ही आत्मा का स्वरूप है।

भेद ज्ञान से शुद्धात्मा जीवन की उपलब्धि होती है।

ज्ञानी जीव :- क्रोधादि - भाव कर्म, ज्ञानावरणादि - द्रव्य कर्म और औदारिक - शरीरादि - नो कर्म, इस प्रकार तीनों प्रकार के कर्मों से रहित तथा अनन्त ज्ञानादि - गुण स्वरूप शुद्धात्मा को, निर्विकार सुख की अनुभूति ही लक्षण जिसका ऐसे भेद ज्ञान के द्वारा अर्थात ध्यान के द्वारा जो जानता है, अनुभव करता है वह ज्ञानी जीव कहलाता है।

मैं तो एक हूँ, मेरा यहाँ कोई नहीं है, किसी भी प्रकार के संपर्क से दूर रहनेवाला हूँ, केवल ज्ञान गुण का धारक हूँ, मुझे योगी लोग ही ध्यान के बल से जान पहिचान सकते हैं और कोई नहीं, इसके सिवाय जितने भी संयोगज भाव है अर्थात शरीरादिक है वे मेरे से सर्वथा भिन्न हैं, इस प्रकार का चिंतवन

यह जीव करता है।

जो व्यक्ति भलाई और बुराई से दूर हटकर एकाग्रचित होता हुआ राजस और तामस वृत्ति इन दोनों का त्याग करके सात्विकता को प्राप्त हो जाता है, और संसार की दृश्यमान वस्तुओं में अब जिसकी कोई भी इच्छा न रहने से जिसने सब प्रकार के परिग्रह का त्याग कर दिया है वही जीव शान्त चित्त हो शुद्धात्मा का ध्यान कर सकता है जो कि संवर होने का अद्वितीय साधन है।

चतुर्थ गुणस्थान वर्ती अविरत सम्यग्दृष्टि जीव कम राग वाला होता है क्योंकि उसके मिथ्यात्व तथा अनन्तानुबंधी क्रोध, मान, माया और लोभ जनित रागादिक नहीं होते है तथा श्रावक के अप्रत्याख्यानावरण क्रोध, मान, माया और लोभ जनित रागादिक नहीं होते है।

ज्ञान गुण या ज्ञान भाव उसके दूसरे नाम इस प्रकार हैं :-

स्वरूपाचरण, स्वसंवेदन, आत्मानुभव, शुद्धोपयोग और शुद्ध नय।

बाधा पैदा करने वाले ऐसे आगम प्रसिद्ध चारों पायों (मिथ्यात्व, अविरति, कषाय, और शुभाशुभ रूप योग भाव) को शुद्धात्मा की भावना में शंका रहित होकर स्वसंवेदन नाम वाले ज्ञान रूप खड़ग के द्वारा काट डालता है।

यदि जिन मत का रहस्य प्राप्त करना चाहते हो तो व्यवहार और निश्चय इन दोनों में से किसी को मत भूलो क्योंकि व्यवहार नय को छोड़ देने से अभीष्ट सिद्धि का मूल कारण जो तीर्थ है वह नष्ट हो जाता है और निश्चय नय को भुला देने परसमुचित वस्तु तत्त्व ही नहीं रह पाता है।

मिथ्यात्व सप्त व्यसन से भी बड़ा पाप है।

वस्तु पर्याय अपेक्षा से तो क्षणिक है और द्रव्य अपेक्षा से नित्य है। शब्दादि रूप पंचेन्द्रियों के विषय में ज्ञानावरणादि - द्रव्यकर्मों में और औदारिकादि पांच शरीरों में दर्शन, ज्ञान, चारित्र इन तीनों में से कुछ भी नहीं है। ज्ञान, दर्शन और चारित्र

ये आत्मा के गुण हैं।

जैन मत में व्यवहार नय यद्यपि निश्चय नय की अपेक्षा मिथ्या है किंतु व्यवहार रूप में तो सत्य ही है। यदि लोक व्यवहार रूप में भी सत्य न हो तो फिर सारा लोक व्यवहार मिथ्या हो जावे, ऐसा होने पर कोई भी व्यवस्था नहीं बने।

पहिले के किये हुए कार्यों से ममत्व रहित होना प्रतिक्रमण है। आगे नहीं करने का दृढ़ संकल्प करना सो प्रत्याख्यान है और वर्तमान के कार्यों से भी दूर रहना आलोचना कहलाती है।

जो प्रतिक्रमण को प्रत्याख्यान को और आलोचना को निरंतर करता रहता है वह ज्ञानी जीव निश्चय से चारित्रवान होता है।

निश्चय रत्नत्रय तो मुख्य है और व्यवहार रत्नत्रय उपचार रूप है। परमात्मा बन जाने का नाम तो कार्य समयसार है और परमात्मा से पूर्व की सन्निकट सम्बन्धित अवस्था का नाम कारण समयसार है, जिसको उत्कृष्ट अन्तरात्मा कहा जाता है।

व्यवहार मोक्ष मार्ग और निश्चय मोक्ष मार्ग दोनों ही मोक्ष मार्ग मुमुक्षु के लिए उपयोगी होते हैं।

जो सहज शुद्ध परमात्मानुभूति लक्षणवाले ाव लिंग से तो रहित है, किंतु द्रव्य लिंग में (बाहरी वेश भूषा में) ही ममता करते है वे आज भी समयसार को नहीं जानते।

समयसार के अपर नाम :- सामान्य परिणामी, जीव स्वभाव, परम स्वभाव, ध्येय, गुह्य, परम तथा तत्त्व ये सब समयसार के अपर नाम हैं।

स्वाध्याय तप :- स्व - अपने लिए हितकर जो श्रुत का सम्यक अध्ययन है वह स्वाध्याय है। बारह प्रकार के तप में स्वाध्याय के समान तप न हुआ है और न होगा।

किसी भी शास्त्र की किसी भी गाथा का अर्थ, प्रकरण प्रसंग, अनुयोग, नय-विवक्षा और द्रव्य गुण पर्याय का अनुसरण कर अध्ययन करना चाहिए।